मुद्रणालय—जैन प्रिंटिंग प्रेस, कोटा

प्रथम संस्करण
१००० प्रति सं० २०११ विक्रमी

प्रकाशक:—
आनन्द कुटीर, कोटा

समर्पण

स्वर्गीय बहिन सूरजकुंवर को जिसकी
दिवंगत आत्मा आज भी
सजल प्रेरणा बन कर विश्व-
चेतना की युग व्याप्त चिर
कालीन करुणा का
संगीत अक्षर अक्षर
में भर रही है ।



सम्मति

कुँअर अमरसिंह कृत "निःश्वास" काव्य को ध्यानपूर्वक पढ़ा। कल्पना और भावुकता से ओत-प्रोत इस काव्य में अनुभूति की व्यंजना भी बहुत अधिक मात्रा में पाई जाती है। इस काव्य को पढ़कर महाकवि प्रसाद के अमर काव्य "आँसू" का स्मरण अनायास ही हो आता है। कवि हृदय की व्यथा इन निःश्वासों के रूप में मूर्त होकर काव्य जगत में अवतरित हुई है। किन्तु निःश्वासों में अनिवार्य रूपेण पाई जाने वाली अस्पष्टता और धुँधलापन काव्य में स्पष्टतया उतर आया है जो संभवतः भावों की उत्कटता और उद्वेग के बाहुल्य का ही परिणाम है। रहस्यवाद की परपरा को लेकर चलने वाले इस काव्य मे पाई जाने वाली यह अस्पष्टता भी काव्य को सुन्दर बनाती है और उसे एक बार पढ़ कर ही पाठक की तृप्ति नहीं होती है। अपने जिस आशापूर्ण उज्ज्वल भविष्य की झलक कवि ने इस काव्य में दिखाई है वह अवश्य ही वास्तविक सत्य बन कर हमारे सामने आवेगा, ऐसा मेरा दृढ विश्वास है। इस काव्य की रचना के लिए कवि को बधाई देते हुए मैं आशा करता हूँ कि समय आने पर वह अवश्य ही राजस्थान के कवियों में अपना समुचित उच्च स्थान प्राप्त कर लेगा।

नई दिल्ली
मार्च १८, '५४

रघुबीरसिंह
(सीतामऊ)

दो शब्द



विश्व के चिरपरिचित करुण-क्रन्दन का आभास मुझे अपनी बहिन सूरजकुँवर के देहावसान के पश्चात् विशेष रूप से होने लगा और वह प्रकृति के मधुमय, रंगीन उपकरणों की चिर तृषित भावनाओं से अधिक गहरा हो चला तथा उन उपकरणों मे अपना विम्ब निरखने लगा, यही इस कविता का स्रोत-स्पन्दन है, जिसे लगभग ग्यारह वर्ष पहिले लिपिबद्ध कर लिया गया था। कोटा महारानी साहिबा ने इसका सम्मान किया और उन्हीं की सहायता के कारण यह पुस्तक प्रकाश में आरही है। अतः मैं उनका आभारी हूँ।

कोटा
आषाढ़ सं० २०११

अमरसिंह

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	८	कितलका	किलकता
८	१	म	में
९	१०	आत	आते
१५	६	जलता	जलती
१९	५	हा	हो
२२	३	वदना	वेदना
२२	७	की	को
३१	४	करता	करती
४	४	सिमटा	सिमटी
६	६	हैं	है
७	४	म	मे
	८	रेखा	रेख
	९	प्रात	प्रति
	१२	आती	पाती
	१	उमग	उमगें
	२	घुल घुल	धुल धुल
	८	रलित	कलित
	८	घास	प्यास
	७	सर से	सरसे
	६	आह्लादों	आह्लादों
	३	ढुल कर	ढुलका
	४	क	कं
	७	बिल खाते	विलखाते
	५	डर मौन विकल-सा था में।	डरमौन विकल-सा थामें
	१	आवेगा	आवेग
	१२	हंसता है	हंसती है
	४	आनन्दाश्रु	आनन्द अश्रु

निःश्वास

कणिकाओं की झाई में
कर विकल-विश्व के दर्शन,
श्यामा पुतली से देखा
अग-जग का करुण विवर्तन।

जब निःश्वासों से धूमिल
चेतन उस पार बिलखता;
किसके कर से चेतन हो
जग-रोदन यहाँ किलकता।

निःश्वास

स्वर गीतातीत अपरिचित
साकार मुखर हो उठता;
सित—श्यामल—घनजाली में
जब तरल बिन्दु झलमलता।

रागिनी विकल क्रन्दन बन
है कम्पित स्वर में बजती;
दुर्दिन की वीणा बनकर
गीले स्वर नभ में भरती।

नभ की अविरल झड़ियों में
क्यों आज विकल-स्वर घुलते?
मानव—पीड़ा से भींगे
साकार बिन्दु बन ढुलते।

निर्झर स्वर में रो झंझा
अपनी बीती कह जाती;
निज उर के भारी स्वर से
झकझोर मचा रह जाती:

उसकी सुध में मृदु लहरें
विक्षुब्ध उर्म्मियाँ बनती;
वे मचल-मचल, उठ-उठ गिर,
निर्जन में करुणा भरती।

निःश्वास

गीले कगार खस खस कर,
क्यों संवेदन के स्वर में;
कुछ रोक न पाते पीड़ा,
गल बहते क्या न लहर में ?

पीड़ा कोमल घावों की
मर्म—स्थल से ला लाकर
उन चिर परिचित लहरों को
देते कगार गिर गिर कर ।

गीले पुलिनों से टकरा,
लहरें करती हैं बातें;
गीले कगार रोते हैं,
सह सह कर मीठी घातें ।

निःश्वास

इस ओर बिखरती लोल लहर,
उस ओर वही इठलाती;
दो शून्य कगारों से मिल
रेखा अशून्य दिखलाती।

बस चिह्न-मात्र रह जाता
उस कलरव मय जीवन का;
उनके पल भर रहने का
उस कोलाहलमय क्षण का।

सागर में लहर विकल है,
मानस में पीर मचलती;
है कौन प्रतिध्वनि किसकी
करुणा गाथा सी कहती?

पतवारों से टकरा कर,
खा खा कर क्रूर थपेड़े;
बिखरी हैं मृदुल तरंगें
भावों सी, बुद्बुद् छोड़े।

धूमिल रेखा में चमका
कोने में झिलमिल तारा;
दर्शन की उत्सुकता है,
पर बहती अविरल धारा।

आवेगों के घन धुँधले—
मानस-नभ पर आ छाये;
आश्वासन—संवेदन से
शीतल आँसू ढल आए।

निःश्वास

सुख-दुःख के छोर मिलाता
वातास हठीला बहता;
प्राणों की सरिताओं में
सुख-दुःख की लहर उठाता।

वाष्पाकुल रुँधे गले में
क्यों करुण गीत भर भर कर,
निज व्यथा तृणों से कहता
बह जाता सरक सरक कर।

जब चाँदी की रातें भी
नित सिसक सिसक कर रोतीं;
मेरी झरती आँखों की
बूँदें भी नभ में सोतीं।

निःश्वास

मेरे मानस म कब के
मीठे सगीत सँजोए;
हिचकी में डूबे अगणित
कोमल कोमल स्वर सोए।

कितने परिचित खेलों की
सुस्मृति सूने से क्षण में;
स्वप्नों में कुलबुल करती
जग पड़ती पलक पुलिन में।

जब जगती सो जाती है,
तब दूर क्षितिज से आकर;
पत्तों पत्तों से कहता,
पहिा कोई गा—गाकर।

निःश्वास

पलकों में व्यथा समेटे
पुतली में आँसू झलमल;
आँसू में डूबी सुस्मृति
सुस्मृति में कसक तरलकल !

फेर तरल कसक में धड़कन
मैं कान लगा सुनता हूँ;
सम्बल विहीन जीवन की
श्वासें बिखरा हँसता हूँ।

निर्जन के शुष्क दृगों में
आँसू तब भर भर आते;
पल्लव के पलक पलक में
वे ढुलक ढुलक ढल जाते।

निःश्वास

वे अरुण दृगों सी कलियाँ
मुँदते पलकों में आकुल,
क्यों सिहर सिहर कंपित सी
बिलखतीं अश्रु भर व्याकुल ?

पुलकित कुसुमों के आनन
से झटक झटक कर मलयज,
बिखराता क्यों वे मोती
काँपा करते क्यों सरसिज ?

ऐसे ही क्षण आहों से
मानस पट धुँधला होता;
उन्नत व्यापक भावों का
गुंजन छिप छिप कर रोता।

निःश्वास

धीरे धीरे जीवन–सुख
सब नील निलय में छिपते;
रो उठते आज खगों के
कूजन में प्रतिध्वनि करते।

नीरस पंखुड़ियाँ झरना,
मदमत्त पवन का बहना,
अलि का उन्मन गुंजन लख
सीखा मैंने चुप रहना।

कवि का कोमल भोला मन
अविचार समझ कर रोया;
मेरे उर का भारी स्वर
हिचकी में डूबा सोया।

गत मधु–जीवन के सपने
जब आकुल करवट भरते,
मानस मे संचित सोये
तब व्याकुल गीत सिहरते।

युग युग से झाड खड़े हैं
मेरी झुलसी क्यारी में;
पतझड़ की सूनी साँसे
रज भरती फुलवारी में।

सूनी मधु की कुजें हैं
उलटी है मधु की प्याली;
झरती पंखुरियों से वह
ले उड़ा सौरभी लाली।

निःश्वास

नीरव सूखी कलियों की
युग से दुःख भरी कहानी,
उन्मन उन्मन कुसुमों से
अलि कहता भर दृग पानी।

ये रूप ज्वाल मालाएँ
ये कृष्ण–जाल चिकुरों के,
स्पन्दन–लहरें भर भर कर
अवसाद बने विधुरों के।

सुनसान हृदय से उठकर
बरसेगी काली बदली.
यह नीरव आह नहीं है
होने जो निःस्वन धुँधली।

कितना निर्मम मंथन है
इस करुणा द्रवित हृदय का ?
कितना आकुल रोदन है
अवसाद गलित मानस का ?

निःश्वास

दुःख से पंकिल जीवन के
स्वर पिघल पिघल रसराते,
बेसुध वियुक्त की पीड़ा
के श्वास गीत बन जाते।

श्वासों से सिहर सिहर कर,
जीवन की ज्वाला जलती;
गलते मानस के कण कण
बिसराती हुई मचलती

पीड़ा की भाव लहरियाँ
छल-छल थल-थल कल-कल कर,
दृग-पुलिनों से टकरा कर
बह पड़ती बिखर बिखर कर।

निःश्वास

आँसू जीवन की गरिमा
बन कर जग में छाया है;
निःश्वास बना करुणामय
वरदान मृदुल आया है।

कुसुमों के कोमल उर से,
वे ओस-बिन्दु ले पीड़ा,
कहते रहते क्या प्रतिदिन
तज कर सुजनोचित व्रीड़ा।

नीला प्याला उलटा है,
मोती से बिन्दु उभारे;
सिहरन सी भरता फिरता
किसका निःश्वास किनारे।

निःश्वास

रजनी निज आकुल उर की
पीडा बूँदों में भरके,
ऊषा को दे चल देती
निःश्वासों के दे झटके।

केवल कुछ प्रखर प्रभासित
दिनकर का तीव्र उजाला,
हिमकर की सुधा—परित में
भरता आता क्यों ज्वाला ?

अनुराग लालिमा ऐसी
जग सह न सकेगा निर्मम;
ऊषा हो श्याम झलक भी
दृग में झलमल आँसू कण।

राका हो मन्द पवन की
मधुरेम झकोर सुखकारी;
नौका की मन्थर गति से
लिपटी लहरें बलिहारी।

निःश्वास

हो क्षितिज चाँदनी दीपित
रजनी गन्धा की क्यारी;
सौरभ में लिपटी सोयी
मेरी मानस फुलवारी।

आकाश धरणि के कोमल
मीठे विशुद्ध उर मिल कर,
झलका दें स्वेद कणों में
जब मिलन भाव छक छक कर,

तारों की मूक हँसी में
कब से उन्मुक्त विरागी;
गिनता है भीगी साँसें
क्या फिर न आयगा रागी।

क्यों आज बिलखती रजनी
निर्झरिणी तू क्यों व्याकुल ?
मेरी भीगी साँसों में
क्या पा न सकी रव आकुल ?

निःश्वास

ये किसके करुण स्वरों को
ले लहरें व्याकुल उठती ?
कुछ निरख वेदना इनकी
क्यों मेरी व्यथा मचलती ?

हिमगिरि से उतर उतर कर
अगणित रोदन धाराएँ,
सिंचित करती जगती की
कहती कुछ व्यथा कथाएँ ।

लिख देते शून्य पटल पर
तारे वे रोती बातें;
ये पुनः लौट आ जाती
क्षण भर मतवाली रातें ।

कह कह कर विरस तटों से
निर्झर किसकी निष्ठुरता,
क्यों व्यर्थ छहर खो देते
अपने उर की आतुरता ?

माधवी कुंज उजड़े हैं
झुलसी हैं मृदुल निकुंजें;
डाली डाली पर पीली
पंखुरियों पर अलि-गुंजें ।

वैभवमय सुखी जगत के
विधिवत व्यापार विलसते;
क्यों मेरे ही स्वर बिखरे
जो बारम्बार बिलखते ?

किसकी इतनी निष्ठुरता !
दी कुचल हमारी कलिका;
मधुमय प्रभात में क्योंकर
यह सिहरन भरती लतिका ?

पर रूप रश्मियाँ कैसी
लावण्यमयी उस छवि की ?
आँखों में समा गई हैं
टलती न याद क्यों उसकी ?

माया की विडम्बनाएँ
नैराश्य निशा में फूलीं;
तब सकुच सकुच कलियाँ भी
रस राग रंग निज भूलीं ।

मेरा वियुक्त मानस अब
निर्ममता सहते सहते;
हो उड़ा चातकी स्वर बन
'पी पी' रट रटते रटते।

निष्ठुर है मायावी है
छाया सा, सपना सा बन;
मादकता सी तन्द्रा में
सुस्मृति बन लौटा मधुक्षण।

छलना ही छलना फैली
सान्त्वना मिली मानस को;
छाया ही सही किसी की
ढाढ़स तो मिला हृदय को।

निःश्वास

जग को दुराव क्या सुख से
यदि है, मुझसे क्यों छीना ?
दुःख तार हिचकियों से ही
मम जीवन पट अति झीना ।

निःश्वास विकल पीड़ातुर
बदली में घुल घुल मिलते;
अवसाद भरे मानस के
अवशेष बिखर झर पड़ते ।

नागी पिघली सी जाती है
जिसमें सपने हैं कल का !
नीले पट पर लिखता कुछ
बूँदों की बूँदें ढलका ।

निःश्वास

अवसाद कालिमा लेकर
ये मेरे लोचन अपने;
पीड़ा के वर्णों में ही
लिख जाते सुन्दर सपने।

अन्तर्दाहों से पिघला
उर प्रतिपल उमस उमड़ कर;
व्याकुल बदली सा विगलित
वह पड़ता आँखें भर भर।

इस ज्वाला जलित हृदय में
उत्तप्त उसासें जलती;
भींगे तारों पर भटकी
टूटी सी साँसें चलती।

शीतल सुगन्ध अति मन्थर,
मीठी मद भरी झकोरें;
चन्द्रिका रजत किरणों में
लेती जब मृदुल हिलोरें।

सौरभ अरण्य में उलझी
चपल चुम्बित सी आँखें
उन्मुक्त ठिठक रह जाती
उन कपल दृगों की पाँखें।

निःश्वास

उमड़ा छलका आता था
मधु दृग प्याला उफनाता;
लहरों पर लहर उठाता
प्यासी झकझोर मचाता।

तुम सौरभ कण बन आते
मैं पुलकित विस्मित विकसित;
कुसुमों की पंखुरियाँ बन
भर देता आँसू पुलकित।

रजनी के कृष्ण पहर में
जब जग सुख में जा सोता;
तारे गिन गिन आँसू से
अवसाद हृदय का धोता।

दृग कमलों में अलि सोया
उन्मन गुम्फन मानस में;
नीरव पल गीत जुटा कर
मुखरित होता क्रन्दन में।

निःश्वास

नभ की विस्तृत गोदी में
तारे हिचकी भर सोते;
युग युग से जले हृदय के
वे भाव अहर्निशि रोते।

जब जब झंकृत कर तन्त्री
व्यथित प्राण सजाते वीणा;
सुधिकर कर म्लान कुसुम की
गिर गिर पड़ती है वीणा।

चातक यह मर्म वेदना
तेरी जड़ नभ कब सुनता;
मेरा क्रदन ले जाता
उसके दृग में जल भरता।

निःश्वास

जब विस्तृत नभ का अञ्चल
नीरव गूगा चुप रहता;
किन अवसादों से भींगा
अलसित समीर वह चलता।

किन भावों में डूबा सा
आता है मंद समीरण;
कलियों के स्मित आनन पर
क्यों छोड़ चला आँसू कण।

मरु सिकता के अन्तर में
भी बहते शीतल झरने;
कितना आतुर उर लेकर
पाहन लगते हैं झरने।

विह्वल कातर भीगे से
मानस से उठती गिरती;
दृग-पुलिनों तक जाने को
सावेग विकल हो बढ़ती।

जब भाव विभोर सरित का,
मानस चञ्चल हो उठता;
लहरों का क्षुब्ध विवर्तन
ले शत स्मृति दीप मचलता।

उस गहरे नील निलय से
निसृत वे विकल लहरियाँ;
नीली सरिता की गोदी
में लेती दीन झपकियाँ।

प्रतिमा सजीव करुणा की
ये बिखरी हुई तरङ्गें;
टूटे से पुलिनों में ही
भर देती भग्न उमङ्गें।

सकरुण उन मूक दृगों की
लाली में शत घावों के,
खिलने से खुली अरुणिमा
के बिंब बने भावों के।

उस घनी पीर की गाथा
निर्मम जगती क्या जाने?
प्रतिदिन नभ की पलकों में
घिरते सावन अनजाने।

प्रतिबिंबित कण कण तृण तृण
पत्तों पत्तों पर चंचल;
किस संवेदन में पिघली
क्या जाने जगत अचञ्चल?

निःश्वास

इस भग्न हृदय के फुस्फुट
टूटे स्वर बहने लगते;
प्राकृत नाना भावों के
सब बंध टूट बह चलते।

अति प्रबल वेग से झरने
कल्लोलिनि बन आकुलतर;
बहने लगते हैं अविरल
उर में भीगे स्वर भर भर।

नीरस निर्जन के उर में
भी पर वे छिप रहते हैं;
अगणित संवेदन स्वर जो
तृण तृण पर टल चलते हैं।

ओ नील निरंकुश नभ तल !
है व्यर्थ प्रसारण तेरा;
जब दे न सके तू निर्मम
विधुरों को क्षणिक बसेरा।

अवसान क्षणों की कटु स्मृति
मानस दल कुरेदती है;
फिर हा हा स्वर में डूबी
दृग पलक मुँदी थकती है।

नि:श्वास

जगती के निठुर हृदय में
प्रतिदिन ये जल कणिकाएँ;
ले एक विकल स्वर मेरा
अंकित करती छलनाएँ ।

इतिहास पुरातन युग का
इस वर्तमान में पलता;
भावी के सूक्ष्म करों में
केवल विचार संचरता।

सध्या की दीन अरुणिमा
पलकों पलकों में सोती;
सुधि कर कर मृदु सपनों की
उषा तक रहती रोती।

बिखराता सुमन सुमन का
शृंगार निठुर हाथों से;
ये काँपा करते सिहरा
झर झर निष्ठुर घातों से।

अति मृदुल रेशमी धवलित,
किरणें कोपल पर चंचल
विकलित जीवन की गाथा
अंकित करता है अविरल।

पढ़ पढ़ कर उनकी पीड़ा
द्रुम दल हैं काँपा करते;
उस विवश सिहर कम्पन को
कोमल अङ्गों में भरते।

ये चञ्चल दीप शिखाएँ
किसकी समाधि पर जल जल;
किन श्वासों से पुलकित हो
हो उठीं सिहर कर चञ्चल।

जय स्वर्ण शैल मालाएँ
अभिनव शृङ्गार बिखेरे
उस चितवन के सपनों में
हँसती निज पलक तरेरे।

फँसे समझूँ पाहन में
जब हृदय हुलसता आता;
गल गल कर पिघल पिघल कर
भीगी सी तानें लाता।

उन रिक्त प्रकोष्ठ दृगों की
नीरव निशि में झलमल झल;
कुछ स्वर्ण स्वप्न से दीपक
उठते हैं बुझ बुझ जल जल।

निःश्वास

ये निर्निमेष अपलक श्लथ
पलकों की सिमटी कोरें;
करती क्षुभित हृदयों की
तरलित कुछ मृदुल झकोरे।

लेती हैं सूनी साँसें
हो उदासीन जग-लय से;
काँपा करती कातर हो
डाली डाली किस भय से?

किन रन्ध्रों से बह बह कर
अति विकल क्षुब्ध लहरी सी,
आ ठहर ठहर कह जाती
दुख विकल कथा गहरी सी?

निःश्वास

उन्मुक्त विशृंखल उन्मन
क्यों अन्यमनस्क मलिन सी
मानस की पीली पंखुरि
सिमटी क्यों सांध्य नलिन सी।

रह रह कर दग्ध हृदय से
ले जाती तप्त उसासें;
कलियों के मूक दृगों में
भर जाती नीरव साँसें।

उठती हैं उस कम्पन में
कातर निराश आशाएँ;
जब सिहर सिहर उठती हैं

सपनों में सुध बुध भूले
दृग में अतीत झलका सा,
करता चित्रित पीड़ा में
मृदु आश्वासन हलका सा।

पीड़ा में घोर हृदय को
अरुणिम व्रण खुल खुल पड़ते;
तब भाव-रत्न मानस के
भीगे स्वर रस रस झरते।

उन्मुक्त विशृंखल उन्मन
क्यों अन्यमनस्क मलिन सी
मानस की पीली पंखुरि
सिमटा क्यों साध्य नलिन सी।

रह रह कर दग्ध हृदय से
ले आती तप्त उसासें;
कलियों के मूक दृगों में
भर जाती नीरव सासें।

उड़ती हैं उस कम्पन में
कातर निराश आशाएँ;
अब सिहर सिहर उठती हैं
करुणा की मृदु भाषाएँ।

सपनों में सुध बुध भूले
दृग में अतीत झलका सा,
झरता चित्रित पीड़ा में
मृदु आश्वासन हलका सा।

पीड़ा में बोर हृदय को
अरुणिम व्रण खुल खुल पड़ते;
तव भाव—मग्न मानस के
भीगे स्वर रस रस झरते।

जग की अलसायी पलकों
की घुलती सी तन्द्रा में
चम चम चमका करते हैं
सपने मीठी निद्रा में ।

वरदान माँगने जब जब
आती है भिक्षुक जगती,
चुप चुप निर्जन रातों में
नभ की पलकों में जगती,

मणि दीपों की मालाएँ
किंकिणि-विरहित-वीणा-स्वर,
भर आते मलय पवन से
सौरभ के प्याले मत्सर ।

यों रिझा रिझा नर्तन कर
पायल के छुम छुम स्वर में;
जग जग प्राणों की पीड़ा
भिक्षा की रटन अधर में।

आ रही अकिंचन बाला
बिखुरी अलकों में रलमल;
रेशमी चिकुर जालों में
स्वर्गीय सुमन ले झलमल।

विचलित गहरी श्वासों ने
संचित निधि अति आतुर हो;
खो दी अपने ही हाथों
मैं रहा देखता चुप हो।

निःश्वास

सारी अधीर अभिलाषा
मानस की तरल उमंगें;
होकर निराश व्याकुल बन
क्रन्दन भर उठीं तरङ्गें ।

सर, सरिता में चञ्चल हो,
टूटी बिखरी छहरी सी;
पुलिनों तक टकरा टकरा
पहुँची न रेखा गहरी सी ।

केवल सिकता के नीरव
चाँदी से उज्ज्वल पट पर;
खिंच गईं भग्न आशा की
शत रेखाएँ तट तट पर ।

केवल हलचल स्मृति की
क्यों व्यर्थ हुआ करती है ?
पल पल में बनती मिटती
लहरी सरका करती है।

विस्मृति की खल लेखा में
फिर स्मृति न वह जग पाई;
उषा की नव रेखा में
तूली न रंग भर पाई।

यद्यपि कितनी मद धारा
प्रतिदिन खग–कूजन रव में;
साकार कलित कल मीठी
बहती तानों के द्रव में।

पर कभी न परिचित कोई
सुन पड़ती वैसी रागिणि;
यद्यपि सतर्क आतुर हो
जगती मम आत्म विरागिणि।

प्रति दिवस शान्त पलकों में
भर भर भारी आशाएँ;
चातक की मूक पुकारें
पातीं न मृदुल भाषाएँ।

क्षिति के सूने कोनों में
वे उलझ उलझ रह जातीं;
गर्जित घन की साँसों में
बस निष्ठुरता चख पातीं।

जिनमें कुछ कुछ अपनी भी
कल स्मृतियों में सिंचित कर;
टूटे स्वर मिला पुकारे
विरही अति आतुरता भर।

सुख दुख जग में प्रतिपल ही
अपने क्षण बदला करते;
किसको पहचानूं, फिर लूं
लहरों से चपल सरकते।

क्यों नष्ट हुई पुलकों की
मज्जित तट चूम सरित के;
किरणों से रंजित फेनिल
निर्मित सपने किस उर के।

निःश्वास

आल्हाद उमड़ते बहते
क्यों लहर तटों पर जाते;
पल भर जीवन बेला को
क्यों मोद मग्न कर जाते।

स्मृति से अनुरंजित होकर
कितनी मादक रेखाएँ;
उस विश्व सुन्दरी-मुख पर
लावण्य सुलभ चपलाएँ।

भ्रमाती बन कर छिप छिप जाती
रंजित कर साँझ सवेरे:
बन बन रहस्य जगती के
विम्बित विगलित सुघमित रे।

क्षिति के अधरों पर प्रतिदिन
ये धवल नील कुञ्जों में;
उस महा मिलन के सपने
बिखरे तारक पुञ्जों में।

वे बिखरे गगन तटों के
नीरस अधरों पर संचित;
किस लिए लहरियाँ अविरल
करती रहती हैं सिंचित।

सुन सुन कर करुण कहानी
वे ढलक ढलक गिरते थे;
जीवन के युवक हृदय में
नव नव रहस्य निखरे थे।

जागृति के रंजन क्षण ले
वेदना व्यथित चेतन में;
ऊषा अलसाई आई
बेसुध रागिनि वेदन में।

संध्या निज अलक बिखेरे
उर थामे रजत करों में;
आती जब अश्रु सँभारे
जगती के व्यथित उरों में।

क्यों पुलकों के सावन फिर
झुक काँप काँप झर झर कर;
पावस की मंजरियों में
गदगदा उठे लुक छिप कर।

निःश्वास

जीवन की भग्न उमंग
विद्युत में कसक कसक कर;
किस सुधि में बरसा झरने
नभ दृग से बहती झर झर।

जीवन की क्षणिक उमगें
सन्ध्या में जग जग उठतीं;
जब मधु प्रभात आया तो
क्यों फिर छिपने हैं लगतीं।

अवसाद करुण कण्ठों की
केवल इतनी सी वाणी;
नीरस रज के कण कण में
जग पड़ती करुण कहानी।

जब मसृण सुकोमल पल्लव
अति स्निग्ध चारु कलिकाएँ;
उर रव को रोक न पाई
घिरती मलिन्द मालाएँ।

निःश्वास

थिर थीं सुकुमार कोरकें
अवसाद घटाएँ छलकीं;
तृण तृण में पीर पिरोकर
शत शत कणिकाएँ ढुलकीं।

प्यालियाँ विविध फूलों की
भर भर कर करुणालय से;
बिखरि बिखरि सिहरी है
किस अन्तर के अनुशय से।

पिघले निःश्वास उमड़ कर
वेदना विकल मानस में;
पलकों में अटक उलझ कर
झुकने श्यामल सावन से।

नीलम रेशमी लहरियों
से शान्त सरोवर का उर;
किस दुख में लहर लहर कर
दब उठता सिहर सिहर कर।

सूने थल की सिकता में
क्यों वर्तुल वर्तुल होकर;
भोगी सी स्मृतियाँ भर भर
छोड़े कुछ चिह्न छहर कर।

क्यों व्यथा जनाये देती
सुनसान क्षणों में छहरी;
रे! कौन सुनेगा गाथा
निर्जन में यद्यपि गहरी।

मुकुलित दृग से पीता था
जब मादक चुम्बन प्याले;
मादक श्वासें गिनती थीं
पल पुलक पुलक मतवाले।

शुचि नभ पलकों में घिर घिर
दुर्दिन के श्यामल बादल;
झर झर कर गरज गरज कर
भरते संगीत तरल कल

फिर भी मेरे स्वर में मिल
गल गल कर मधु श्वासों में;
सुख के ही क्षण पनपे थे
छलना के निःश्वासों में।

छुन छुन समीर आता था
मादक झकझोर जगाता;
उस मूक कठोर शिला में
प्यासी हिलकोर उठाता।

था निर्भय देखा करता
शृङ्गार कलित मानस में;
जब तरल बिन्दु नर्तित थे
भ्रम भरता था आनन में।

पर राका रास विरागी
स्वर बरबस बाहर आया;
कैसे समझाऊँ उर को
जिसको रोदन ही भाया।

आनन्द अटकता केवल
भावों की मूक हँसी में;
ज्यों अन्धकार छिप रहता
आँखों की एक कणी में।

आँसू में सरपस टटका
हिचकी में उलझा सिसका;
अति दूर दूर मानस में
कल्पना किरण सा चमका।

पल्लव की ताल लगाती
वल्लरियाँ नर्तन करतीं;
मधुमास उफनता छलका
मधुपावलि झूमीं भ्रमतीं।

शृङ्गार सजा जाता है
किरणों का लास अनूपम;
कोंपल कोंपल में मेरा
दृग झँपता प्रतिपल अरुणिम।

रन्ध्रों में विलसित हर्षित
वातास सुवासित आता;
कलियों की छिपी सिसिकियाँ
पर केवल कवि सुन पाता।

निःश्वास

सरिता की चपल लहरियाँ
जब जब उन्मत्त मचलतीं;
सोई फुरफुरी हृदय की
जग विकल श्वास में बहती।

मेरे दुख की सुख आशा
पलकों में क्षण भर लाई;
नूतन अनन्त जीवन की
झाँई झलकाती आई।

रस सरसा शुष्क तृणों में
मद की हिलकोर उठाती;
जीवन की जाग्रत गरिमा
पल्लवित झूम इठलाती।

मुद गया दिवस पलकों में
ले सीमाहीन निराशा;
लघु प्राणों के प्याले में
भर भर अनन्त की आशा।

रजनी शृङ्गार लुटाती
छलना सी क्यों विस्मृति में;
प्रति दिन जीवन रोता है
तारों की म्लान द्युति में।

ऐसी ही छलनाओं में
सुख सपने झूला करते;
नव नव चित्रों में नव नव
रंगीन भाव कुल घुलते।

चिर दुख में नित कम्पित हो
भावी सुख भूला करता;
आँसू की लड़ियों में ही
आनन्द बिखरता रहता।

पहचान न पाया भावुक
अपना क्षण चल माया में;
चीत्कार पला करता है
कुञ्जों की कल छाया में।

मधुसिक्त पाँख में उसकी
उन्मद अभिलाषा अटकी;
प्रत्याशा की छाया में
वैभव की पलकें झपकीं।

चल चल दुख की रातों में
जग जग सपनों में निशि निशि;
थक थक सुख सोया करता
पल पल दृग दृग में दिशि दिशि ।

सन्ध्या थी, मलयज बहता
अनुराग लालिमा गहरी;
क्षिति के अधरों पर रंजित
उर की लाली आ छहरी ।

चुपके से सन्ध्या तारा
जब चन्द्र भाल पर चमका;
तब शीश फूल से चूते
मणिबन्धन टूटा उसका ।

चंचल सर में प्रतिबिम्बित
थोड़ा प्रयास सा करता;
निज मनोभाव सा गहरा
रंग ऊषा का झलमलता।

हीरों के द्रव से झरने
माणिक मदिरा से पूरित;
यह चितवन मधुमय चंचल
मद पूर्ण प्यालियाँ चुम्बित

मम हृदय निखरता आता
रोदन धारा से धुल धुल;
कल्मष बिखरा है सारा
अविरल क्रन्दन में घुल घुल।

भावना थकी सी सोती
आँसू की कल कणिका में;
तब प्यार छलकना उमड़ा
आवेग ललित सरिता में।

भावों की द्रवित कहानी
सुनता आँसू कोमल उर;
निखराते प्यार उमंगता
छल छल अपने दृग भर भर।

क्या दुख, रे ! पीड़ा, मानव
जीवन के विरह मिलन की;
जब प्रेम शिखर पर हँसती
करुणा-कल्याणी जग की।

दुख का द्रव सुख का आसव
क्रन्दन है उर का गाना;
आँसू मरन्द बूँदों सा
जिसकी आनन्द विधाना।

विश्वास मुझे भ्रम में भी
पर थिर हो ऐसी छलना;
जीवन के इन्हीं क्षणों की
सुखदायी प्रहरी कलना ।

सरके चमके ठिठके रुक
जड़ मूक चपल थे मुक्ता;
आशा उल्लास उमंगें
अभिलाष हास उत्सुकता ।

उन्मत्त सभी चिन्तित से
भरते मन में अस्थिरता;
कोमल तारों पर सहसा
गहरा विषाद है घिरता ।

दुख स्मृतियों के पट फेरे
विरहानल अपलक जलती;
वेदना स्वरों में डूबी
कोमल करुणा है पलती।

कुसुमों के कोमल उर में
मद भरी मधुरिमा जगती;
पलकों में ललकें छाई
ललकों में प्यास मचलती।

भ्रमरों ने बीन बजाई
कुञ्जों में बटी बधाई;
पिंगित पराग मधुकण से
मधुरिम निकुंज मुसकाई ।

स्मिति में अनुरंजित कलियाँ
भर भर अधीर ललचाई;
तृण तृण में स्वेद बिखेरे
उसकी पलकें अलसाई ।

मलयज अबीर भर लाया
लहरों ने पायल बाँधे;
चन्द्रिका थिरकाती मंजुल-
पट आई निज स्वर साधे;

नीरव रातें भी जागीं
निज चिकुर रेशमी खोले;
कुछ झूम झहर लहराकर
झूले अपांग मृदु भोले।

शम्पा नीरद आलिङ्गन
यौवन के मादक क्षण में;
क्यों घुमड़ नशीले कम्पन
करते विभोर क्षण क्षण में।

क्यों बरस झरे रोते वे
सूनी सी साँसें भरते;
उनके ढलते यौवन के
आशाप्रद स्वप्न बिखरते।

यह इन्दु पटल अवगुण्ठन
में किसकी मृदु मुस्काहट;
छिप छिप दिप दिप इठलाती
भर भावों में अकुलाहट ।

मधु-बिन्दु छलक कर चूते
आये चुनके कुञ्जों में;
बन कर मरन्द मृदु सर से
विकसित प्रसून—पुञ्जों में ।

मकरन्द भरी पंखुरियाँ
अलसाई किन सपनों में;
कुछ खुली झपी तन्द्रा में
वेसुध सी निज नयनों में ।

वह चुप चुप बातें करना
फूलों का हँसकर अलि से;
कुछ अवगुण्ठन सरका कर
रस लेना कुसुमावलि से।

नभ की श्यामल पुतली पर
आह्लादों का छा आना;
चंचल पलकों पर अस्थिर
अभिलाषा का इठलाना।

निःश्वास

उन स्निग्ध सुभग अंगों पर
नव स्वेद कणों का जमना;
शत शत कंपन में उनके
कल अंगों का थक छिपना।

सरिता की कल गोदी में
लहरों का मस्त मचलना;
भर भर उमंग पुलिनों के
अधरों पर चुम्बन भरना।

मेरे मर्मस्थल तल में
वे ललक जगाने आई
तब स्तब्ध सुथिर पलकों में
झलकी हल्की सी झाई।

निःश्वास

नीरव पर मर्म भरी थी
गहरी पैनी आँखों से:
निश्वास छोड़ हत आशा
ठुकराया था श्वासों से।

यह मूढ़ चेतना मेरी
जब जब उसकी सुधि करती;
अनुपम आशा शीतलता
थकती आँखों में भरती।

नभ जड़ित सुप्त सा चेतन
तन्द्रा में सुध बुध खोकर;
तारों सा जगमग जगमग
कुछ खोज रहा सो खोकर।

मानस अम्बर में फैली
निशि की नीरव पलकों में;
पाकर सम्बल सोया वह
आश्वासन था अलकों में।

था क्षणिक प्रसंग हमारा
देखा कलियों ने रोकर;
फूलों ने सिसकी ले कर
कुञ्जों ने आहें भर भर।

अरी वेदने! सजग विश्व में
छाई उल्कापातों सी;
और चक्र में भ्रमती प्रतिपल
विकल वायु की घातों सी।

निःश्वास

कोमल अरुण भावनाओं पर
यह छाया वाष्प सलिल कैसा;
नव कलिका के अरुण अंग पर
छा जाता तुषार कैसा ।

जागृत अपलक विकल श्वास से
मानव की कोमल वाणी;
व्यथित विश्व चेतन में आई
बनकर करुणा कल्याणी ।

करो रुदन से क्यों मानवता
है निराशा में दबती;
जब मानव मूक—भावना में
है मङ्गल सी ही हँसती ।

निःश्वास

सन्ध्या कर आह्वान खगों का
जब झुरमुट में सो जाती;
जग निर्झर की कोमल वाणी
मंगल गीत सजा लाती।

ऊषा में अनुराग मधुरतम
अरुण अरुण सा होकर आज;
करुणा के मंगल गानों में
प्रमुदित करता मनुज समाज।

कौन वेदना जगी विश्व में
कोने कोने में छाई;
कौन निठुरता उत्तर क्षितिज से
कोमल फूलों पर आई।

सन्ध्या भी ले दीन दृगों को
सो जाती अम्बर तल में;
ऊषा में जागृति की हलचल
रंजित कर कर पल पल में।

पगली सी क्यों विकल वेदना
फिरती मारी मारी सी,
कभी कणों में कभी तृणों में
मोती नभ में हारी सी।

भग्न हृदय के कैसे क्षण की
करुणा भरी कहानी ले;
आज चले क्यों प्रस्तर पथ पर
निर्झर मूक उलहना ले।

निःश्वास

व्यर्थ गगन में घिर घिर उमड़ी
बदली तरल हृदय वाली;
शून्य स्वरों से जड़ित हृदय क्या
सुन सकते ये मतवाली ।

सरिता में तरंग व्याकुल है
कोंपल पर किरणें रोतीं;
नीड़ों में व्याकुल खलकूजन
लतिका में कलियाँ रोतीं ।

कैसे हो सम्मोह चेतना
झपकी नीरव गानों में;
निर्झर उपालम्भ देता जब
गिरि को अविरल तानों में।

आज बरसने दो आँगन में
मुक्त मेघमाला से सावन;
लगने दो फिर प्यारा निज में
लगा रहे आकुल आलिंगन।

निश्श्वास

बिखरे भरे आज संसृति पर
निखर निखर कर उर मेरा;
मधु बन बन कर कलियाँ बरसे
तृण तृण में हो सरस सवेरा।

नीली पुतली में पलकों के
सम्पुट में हो बन्द अजान;
स्वप्न सरकते ज्यों तन्द्रा में
फैले नव नव भाव विधान।

निश्वास पिघलते आते
आँसू में मानस सोया;
छन्दों की बूंदे ढुल कर
अवसाद उरों का धोया ।

मसि बही बाष्प सी सारी
तूलिका जाड़ित कण्ठों में;
अनमोल बोल ये आँसू
झलमलते अरुण दृगों में ।

निःश्वास

नीले डोरों में झलका
अनुराग रंग उर उर का;
या भूला भूला फिरता
मादक घ्राण मधुप निकर का।

तारों में आँख मिचौनी
कौमुदि में मादक श्वासें;
अगणित दीपों को झलमल
करती प्रकाश निश्वासें।

क्यों विकल राग तन्द्रा में
घुलते स्वर्णिम स्वप्नों से;
किस विरही की गाथा से
संकुचित सुमन युग युग से।

घिर घिर दृग में आती क्यों
वह एक अपूर्व अचेतन;
बेहोशी मादकता या
विस्मृति की बेसुध तड़फन।

ऊषा का अरुण दृगाचल
कलियों की रक्तिम आँखें;
अनुराग लालिमा में रंग
खुलती यौवन की पाँखें।

अम्बर में ऊषा सोयी
सो गया सुमन लतिका में;
चिरस्थायी हो न सकी सुस्मिति
झर, थकी विकल मानस में।

सोये आनत अधरों पर
पत्तों के अगणित भीगे;
स्वर सरिता तट पर बेसुध
लहरी उर के द्रव भीगे।

शम्पा थक सोई घन में
स्थायी परिरम्भ न मिलता;
लहरें नीरव वेला में
सोयी अवसाद न मिलता।

द्रुम दल पर किरणें सोई
आ लास और क्षण भर का:
सौरभ सोया कलियों में
रस राग रंग पल भर का।

सोई ज्वाला कानन में
फैलाये लम्बी अलकें;
टिम टिम सोये नभ तारे
निस्तब्ध किये सी पलकें ।

उनके उर में चंचल हो
उठती हैं अगणित तानें;
पाते न समा जब उर में
बन बहते बरबस गाने ।

इतनी उन्मद चेतनता
जगती पर सह न सकेगी;
कम्पित छाया में कलियाँ
मदिरा निमग्न लुढकेंगी ।

सुख की केवल बूँदे हैं
दुख का अथाह सागर है;
मॉझी लपका बूँदों को
सागर डूबा तड़फन है ।

मीठे फल चखते चखते
कटु फल जग भले समझता;
कण कण में करुणा बिखरा
भारी मन हलका करता ।

चिर संचित प्रणय निलय से
बहते रोदन के झरने;
जीवन का भीगा चेतन
पावस सा लगता ढरने ।

सब राग शून्य में बिखरे
केवल चिन्हित रव सारे;
मधु राका में विल खाते
चैतन्य क्षणों से तारे !

उन्मत्त विकल पागल से
भावों का जुटना मेला;
चंचल सर के उर में ज्यों
फल इन्दु बिम्ब हो खेला ।

रस–आसव कंज कली का
भ्रमरों को मादन कर भी;
चुक पाया आज न तक वह
सौरभ घन बिखर बिखर भी।

उर मौन विकल सा था मैं
सपनों की तड़ित छिपाये;
ये दृग नभ के कोनों में
सावन के घन घिर आये।

आडम्बर इस जगती के
दूषित वासना जगाते;
उन्मुक्त पटल धरणी के
सुन्दर मृदु गात उठाते।

द्रुम दल आनत अधरों पर
क्यों तरु का मर्मर सोया;
सरिता उर अंचल में क्यों
कल कल स्वर भीगा खोया।

अपने ही मर्मस्थल में
अपनी गाथा से पीड़ित;
थक रातें सो जाती क्यों
अम्बर में अर्द्धोन्मीलित।

फैला कर घन कच जाली
हा हा स्वर कल सुमनों में;
सिसकी भर भर सन्ध्या क्यों
सोई क्षिति के कोनों में।

थर थरा उठी मीड़ों में
जीवन- की वीणा वरुणा;
झङ्कार दुखी हृदयों की
तानों से झंकृत करुणा।

तिलमिला हृदय उठता है
लखकर अन्याय अलेखा;
मुस्कान ओट रोती है
छिप छिप विषाद की रेखा।

सपना था आँख झँपी थी
झकझोर मचाती पीडा;
भावों के पत्र गिराकर
हँसता समीर कर क्रीड़ा।

निःश्वास

पतझड़ सा सूना जीवन
लूओं सी साँसें चलतीं;
पत्तों में उड़ी हवा की
शाश्वत सिसकी सुन पड़ती।

मृदु कम्पन आल्हादों में
जागा था स्वप्न सरित सा;
कम्पित कमनीय लता पर
सुन्दर सौहार्द्र हरित सा।

मृदु मञ्जु कञ्ज पुञ्जों पर
हीरे नीहार कणों में;
शबलित छल भावों की सी
थी चपल झलक सपनों में।

मुसका मुसका छिपती थी
जब बंकिम भृकुटि किसी की;
कौतुक में तृषा बुझाने
झलकी थी झलक किसी की।

उस नभ नवल सुषमा पर
लुट लुट पड़ते पागल मन;
मन में अपूर्व मादकता
नयनों में मृदु उत्पीड़न।

आलोड़ित मानस सर में
भावना हिलोरें जागीं;
पा शीतल स्पर्श किसी के
स्वर का, सब जड़ता भागी।

मधुपों की मादक ध्वनियाँ
स्वच्छन्द सरित कल कल में;
पाकर अतीत के मृदु स्वर
करती कल्लोल लहर में।

छिप छिप कर मधुबालाएँ
मधु ऋतु का मधु कुंजों में;
मधुपों सी क्रीड़ा करतीं
सुमनों से मिल कुञ्जों में।

वातास शिथिल हो जाता
जब उदासीन नभ तल में;
क्यों एकाएक ललकती
मच उठती मम हृत्तल में।

आनन्द लहरियाँ सर सर
ले ले कर मृदुल हिलोरें;
फैली चञ्चल हो हो कर
छा हरिताचल की छोरें।

पा स्पर्श हृदय वीणा से
निसृत मादक तानों का;
है लहराता सा जाता
श्यामल अञ्चल प्राणों का।

वैसे ही पुलक पुलक कर
स्वप्निल स्मृतियाँ जग पड़तीं;
कितनी आतुर सी होकर
भावना सजग हो उठती।

स्वर्णिम पांखें फैला सित
बदली मराल बाला सी;
सुर चाप दाम लटकाये
आई अप्सरि बाला सी।

स्वागत को भाव लली के
द्रुत आवेगों सी प्रेरित;
दौड़ी आती है जिसका
नीला अञ्चल झकझोरित।

प्यासाकुल कंठों में ही
दावे झंकार हृदय की;
मैं उत्सुक हूं रे कब से
झाँकी को उस सहृदय की।

आवेग सलिल आँखों में,
उच्छ्वास विकल श्वासों में;
आकुल उर था उद्वेलित
डूबा सोया हिचकी में।

आभार ललक पुलकों में
नत भार हुलस पलकों में;
व्रीडा यह क्यों भृकुटी में
जब भेद न तुझ में मुझ में।

कितनी करुणा सोती है
कवि के कोमल मानस में;
ओ ! व्यथामयी निर्मम तू
जगती रोती कण कण में।

है खुली हृदय सरसिज की
मधु से भींगी ये पाँखें:
लो भर लो मधुबालाओ
प्यासी न रहे वे आँखें।

इस तरल हृदय मानस में
उद्वेलित कोटि तरङ्गें;
इस दुर्बल जग पर छाई
शत शत नव सरस उमङ्गें।

ले यदि जग को इच्छा है
कितने हैं पीने वाले;
मैं भी पर नहीं थकूँगा
भर भर तृषितों के प्याले।

आऊँ मरन्द मदिरा सा
आँखों में मदवाली सी;
खिलखिला उठे कुड्मल सी
आवे करुणा प्याली सी।

इन विरह तप्त श्वासों का
चख चख मिठास यह जगती;
लघु प्राणों के दीपों से
शाश्वत प्रकाश सा भरती।

करुणा का रे रस इस में
जगती हँसती क्यों निष्ठुर;
सहृदय मानस में पलती
कल्याण भावना शुचितर।

मानस के शून्य कगारे
अति सूक्ष्म बिन्दु सी सरसी:
इस जग की [illegible] मृदु छोरे
भावना घटा सी बरसी।

सीमा से दूर कहीं पर
जा फूला मेरा अन्तर;
भर लाया अपने उर में
उसके उर का आकुल स्वर।

आनन्द सिन्धु लहराता
भावना उर्म्मियाँ शाश्वत;
प्रिय से मिलने को आतुर
नापतीं छोर नभ तल गत।

आल्हाद उमगता आता
फूली है मधु की कुञ्जें;
कण कण में मोती बिखरा
हँसता है मृदुल निकुञ्जें।

निःश्वास

अलसाई आँखें खोले
सुमसृण-पल्लव की पलकें,
खुलती हैं धीरे धीरे
आनन्दाश्रु से झलकें।

जीवन के जीर्ण-पुरातन
सब पत्र झरा हर्षाते,
उत्सर्ग लिए पनपे से
नव-जीवन ले मुसकाते।

किरणों ने उतर क्षितिज से
कुञ्जों में हास बिखेरे,
फिर मनोभाव से खिलकर
अलियों के लगते फेरे।

ऊषा के मसृण कोमल
गद्गद् उर से बह बह कर;
छाई कपोल पर लाली
अनुराग राग से रंग कर।

अब भी उस प्रणय मिलन के
क्षण सजग हो रहे सारे;
नीले पट पर अंकित सी
सुस्मृति में जगते तारे।

—×—×—